शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-4.0
Vol.-3; issue-2 (April-June) 2026
Page No- 192-201
©2026 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com

Author's :

1. अशोक कुमार

लेखक, शोधार्थी, वेद विभाग, गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार.

2. डॉ. दीन दयाल

सह-लेखक/निर्देशक, असिस्टेंट प्रोफेसर, वेद विभाग , गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार.

Corresponding Author :

अशोक कुमार

लेखक, शोधार्थी, वेद विभाग, गुरुकुल काँगड़ी समविश्वविद्यालय, हरिद्वार.

स्वामी सत्यपति परिव्राजक का क्रियात्मक योग : निर्विषयता एवं निष्काम कर्म के विशेष सन्दर्भ में बृहती ब्रह्ममेधा का विश्लेषणात्मक अध्ययन

सार : प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य स्वामी सत्यपति परिव्राजक द्वारा प्रतिपादित 'क्रियात्मक योग' के दार्शनिक एवं व्यावहारिक स्वरूप का विश्लेषण करना है। इस अध्ययन का मुख्य आधार बृहती ब्रह्ममेधा भाग-1 में संकलित 11 जुलाई 2003 से 8 अक्टूबर 2003 तक वानप्रस्थ साधक आश्रम, रोजड़ में आयोजित त्रैमासिक उच्चस्तरीय क्रियात्मक योग प्रशिक्षण शिविर के प्रवचन हैं। स्वामी जी ने पतंजलि के 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' सूत्र को क्रिया के माध्यम से साकार किया।

शोध से स्पष्ट होता है कि स्वामी सत्यपति परिव्राजक ने 'निर्विषयता' को क्रिया योग का प्रथम सोपान माना। निर्विषयता का अर्थ है अभ्यास काल में मन को ईश्वर, आत्मा, प्रकृति या किसी भी बाह्य-आन्तरिक विषय से पूर्णतः पृथक कर देना। उन्होंने साधकों को निर्देश दिया कि गायत्री मन्त्र का अर्थसहित स्मरण करने के पश्चात मन को सर्वथा रोक दें। इस प्रक्रिया में इच्छा और प्रयत्न का भी निरोध आवश्यक है।

इस शोध में 2003 के शिविर में निर्धारित 25 नियमों का भी अध्ययन किया गया है। ये नियम मौन, स्वाध्याय, आत्मनिरीक्षण, संस्कृत-सम्भाषण आदि के माध्यम से साधक के बाह्य एवं आन्तरिक जीवन को अनुशासित करते हैं। स्वामी जी के अनुसार निष्काम कर्म के बिना कोई व्यक्ति योगी नहीं बन सकता। अतः उन्होंने ईश्वर-प्राप्ति को ही एकमात्र लक्ष्य बनाकर सभी कर्म करने पर बल दिया।

निष्कर्षतः, स्वामी सत्यपति परिव्राजक का क्रियात्मक योग केवल आसन-प्राणायाम तक सीमित न होकर मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के पूर्ण निरोध की वैज्ञानिक पद्धति है। यह शोध आधुनिक युग में तनाव प्रबंधन एवं आत्म-साक्षात्कार हेतु उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

मुख्य शब्द : क्रियात्मक योग, निर्विषयता, स्वामी सत्यपति परिव्राजक, मनोनिग्रह, निष्काम कर्म, बृहती ब्रह्ममेधा

1. भूमिका : योग भारतीय संस्कृति की अमूल्य निधि है। महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में योग को 'चित्तवृत्तिनिरोध' के रूप में परिभाषित किया

है।[1] इसका तात्पर्य है कि चित्त की सभी वृत्तियों का पूर्ण रूप से रुक जाना ही योग है। यद्यपि पतंजलि ने अष्टांग योग - यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि - का क्रमबद्ध वर्णन किया, तथापि व्यवहार में अधिकांश साधक केवल आसन और प्राणायाम तक ही सीमित रह जाते हैं। चित्तवृत्ति निरोध की क्रियात्मक विधि का अभाव आधुनिक योग साधना की सबसे बड़ी कमी है।

इसी अभाव की पूर्ति हेतु 20वीं-21वीं शताब्दी में स्वामी सत्यपति परिव्राजक ने 'क्रियात्मक योग' की अवधारणा प्रस्तुत की। स्वामी जी का जन्म एक मुस्लिम परिवार में हुआ था, किन्तु सत्य की खोज में उन्होंने सनातन वैदिक धर्म को स्वीकार किया।[2] ऋषि दयानन्द सरस्वती के ग्रन्थों, विशेषकर सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन से प्रभावित होकर उन्होंने सम्पूर्ण जीवन वैदिक योग के प्रचार-प्रसार हेतु समर्पित कर दिया। उन्होंने दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़ की स्थापना की, जहाँ से हजारों साधक क्रियात्मक योग का प्रशिक्षण प्राप्त कर चुके हैं।[3]

स्वामी सत्यपति परिव्राजक का मानना था कि योग केवल शास्त्रार्थ या व्याख्यान का विषय नहीं है। उन्होंने स्पष्ट कहा कि 'योग की क्रिया करके ही ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है'।[4] इसीलिए उन्होंने 11 जुलाई 2003 से 8 अक्टूबर 2003 तक वानप्रस्थ साधक आश्रम, रोजड़ में 90 दिवसीय त्रैमासिक उच्चस्तरीय क्रियात्मक योग प्रशिक्षण शिविर का आयोजन किया। इस शिविर का उद्देश्य था - 'वेदादि सत्यशास्त्रों में प्रतिपादित विशुद्ध वैदिक-योग का विज्ञान और क्रियारुप में अभ्यास द्वारा आत्मा से परमात्मा का साक्षात्कार करना'।[5]

इस शिविर की विशेषता यह थी कि यहाँ योग की शिक्षा केवल मौखिक नहीं दी गई, अपितु प्रत्येक साधक से प्रतिदिन क्रिया कराई गई। स्वामी जी ने गायत्री मन्त्र को आधार बनाकर मनोनिग्रह का अभ्यास कराया। उनकी पद्धति की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता 'निर्विषयता' है। निर्विषयता का अर्थ है - अभ्यास काल में मन को किसी भी विषय पर न टिकने देना, न ईश्वर पर, न आत्मा पर, न प्रकृति पर।[6] यह स्थिति साधारण ध्यान से भिन्न है, क्योंकि सामान्य ध्यान में किसी न किसी आलम्बन की आवश्यकता होती है, किन्तु स्वामी जी का 'निर्विषयक ध्यान' सभी आलम्बनों से मुक्त है।

स्वामी जी ने साधकों के लिए 25 कठोर नियम भी निर्धारित किए थे।[7] इन नियमों में प्रातः 3:30 बजे जागरण, मौन, संस्कृत-सम्भाषण, स्वाध्याय, आत्मनिरीक्षण, इच्छापूर्वक विचार उत्पन्न न करना आदि सम्मिलित थे। इन नियमों का उद्देश्य साधक के बाह्य जीवन को इतना अनुशासित करना था कि आन्तरिक योगाभ्यास में बाधा न आए।

प्रस्तुत शोध पत्र का उद्देश्य इन्हीं प्रवचनों एवं नियमों के आधार पर स्वामी सत्यपति परिव्राजक के क्रियात्मक योग का स्वरूप स्पष्ट करना है। इस शोध में विशेष रुप से तीन बिन्दुओं पर ध्यान दिया गया है: 1. निर्विषयता की अवधारणा एवं क्रियाविधि, 2. आत्मा-मन-इन्द्रिय निर्माण की प्रक्रिया, 3. निष्काम कर्म का योग में स्थान। यह अध्ययन बृहती ब्रह्ममेधा भाग-1 के 'क्रियात्मक योगाभ्यास' अध्याय पर आधारित है, जिसमें 11 जुलाई से 14 जुलाई 2003 तक के प्रवचन संकलित हैं।

आधुनिक युग में जब मानसिक तनाव, अवसाद और चित्त की चंचलता एक वैश्विक समस्या बन गई है, तब स्वामी सत्यपति परिव्राजक की निर्विषयता की क्रियात्मक विधि अत्यन्त प्रासंगिक हो जाती है। यह शोध न केवल योग के अकादमिक अध्ययन में योगदान देगा, अपितु साधकों के लिए व्यावहारिक मार्गदर्शन भी प्रस्तुत करेगा।

2. क्रियात्मक योग का स्वरुप: निर्विषयता की अवधारणा : स्वामी सत्यपति परिव्राजक द्वारा प्रतिपादित क्रियात्मक योग का केन्द्रीय तत्व 'निर्विषयता' है। यह अवधारणा पतंजलि योगदर्शन के 'विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः'[1] सूत्र पर आधारित है, किन्तु स्वामी जी ने इसे अत्यन्त सूक्ष्म एवं क्रियात्मक रुप प्रदान किया है। 11 जुलाई 2003, आषाढ़ शुक्ल एकादशी के दिन दिए गए प्रवचन में स्वामी जी ने निर्विषयता का प्रयोगात्मक स्वरुप स्पष्ट किया।[2]

2.1 निर्विषयता का अर्थ : सामान्यतः ध्यान-साधना में साधक किसी न किसी आलम्बन को ग्रहण करता है। कोई ईश्वर के सगुण रुप का ध्यान करता है, कोई ज्योति का, कोई ॐ का, कोई श्वास का। स्वामी सत्यपति परिव्राजक ने इस परम्परागत पद्धति से भिन्न मार्ग दिखाया। उनके अनुसार 'निर्विषयता का अर्थ है मन को किसी भी विषय से न जोड़ना'।[3]

स्वामी जी का निर्देश है: 'अब आपने किसी विषय में विचार नहीं करना है'।[4] यहाँ 'विषय' शब्द अत्यन्त व्यापक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। इसमें न केवल संसार के पदार्थ आते हैं, अपितु ईश्वर, आत्मा, प्रकृति, सृष्टि आदि सभी आ जाते हैं। स्वामी जी स्पष्ट करते हैं: 'प्रयोग के समय में न ईश्वर को विषय बनाना है, न आत्मा को विषय बनाना है, न प्रकृति को विषय बनाना है, न सृष्टि को विषय बनाना है'।[5]

यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि ईश्वर को भी विषय नहीं बनाना है, तो क्या यह नास्तिकता है? स्वामी जी इसका समाधान करते हुए कहते हैं: 'ईश्वर आनन्द स्वरुप है, रहे। उसको प्राप्त करो, इसका निषेध नहीं है'।[6] अर्थात् ईश्वर का निषेध नहीं है, केवल अभ्यास काल में उसे ध्येय के रुप में ग्रहण करने का निषेध है। इसका कारण यह है कि जब तक मन किसी भी विषय को पकड़े रहेगा, तब तक वह पूर्णतः निरुद्ध नहीं हो सकता।

2.2 निर्विषयता की क्रियाविधि : स्वामी जी ने निर्विषयता प्राप्त करने की 3-चरणीय विधि बताई है:

चरण 1: गायत्री मन्त्र का पाठ : 'पहले गायत्री मन्त्र का पाठ करें'।[7] किन्तु केवल पाठ पर्याप्त नहीं है। 'इसका अर्थ करते हुए, उसको भावना करते हुए, स्मरण करते हुए' पाठ करना है।[8] इसका उद्देश्य है कि मन आरम्भ में शुद्ध एवं एकाग्र हो जाए।

चरण 2: मन को सर्वथा रोक देना : गायत्री पाठ के पश्चात मुख्य प्रयोग आरम्भ होता है। 'अब मन को सर्वथा रोक देना है'।[9] यहाँ 'सर्वथा' शब्द महत्वपूर्ण है। इसका अर्थ है - आंशिक नहीं, पूर्ण रुप से रोकना। न कोई विचार उठे, न कोई स्मृति आए, न कोई कल्पना बने।

चरण 3: इच्छा और प्रयत्न का निरोध : मन को रोकने के लिए इच्छा और प्रयत्न को भी रोकना होगा। स्वामी जी कहते हैं: 'इच्छा, प्रयत्न को रोक रखा है, यह मुख्य विषय रहेगा'।[10] जब साधक में कोई इच्छा ही उत्पन्न नहीं होगी, तो मन स्वतः शान्त हो जाएगा। यह स्थिति 'हेयोपादेयशून्य' कहलाती है।[11]

2.3 निर्विषयता में आने वाली बाधाएँ एवं समाधान : प्रयोग के दौरान साधकों ने कई अनुभूतियाँ व्यक्त कीं। एक साधक ने कहा: 'मैंने कुछ सूक्ष्म शब्दों का उच्चारण किया, परन्तु वे शब्द कौन-से थे स्मरण नहीं है'।[12] दूसरे साधक ने कहा: 'बाहर की ध्वनि आ रही थी'।[13]

स्वामी जी ने इन बाधाओं का समाधान बताया। ध्वनि के विषय में उन्होंने कहा: 'बाहर की ध्वनि आ रही थी - तो उसको रोक देना था'।[14] यहाँ 'उपेक्षा' का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा: 'उपेक्षा का अर्थ है ध्यान नहीं देना और बलपूर्वक रोक देना'।[15] अर्थात् केवल उदासीन होना पर्याप्त नहीं है, अपितु बलपूर्वक वृत्ति को रोकना है।

2.4 निर्विषयता का प्रयोजन : निर्विषयता का अन्तिम प्रयोजन है - मन, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीर और आत्मा पर पूर्ण नियन्त्रण।[16] स्वामी जी पूछते हैं: 'इसका प्रयोजन क्या है?' और स्वयं उत्तर देते हैं: 'इसका प्रयोजन है मन, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीर और आत्मा पर नियन्त्रण'।[17]

जब साधक निर्विषयता में स्थित हो जाता है, तो 'मन अनधिकृत विषय में नहीं जाएगा, केवल आवश्यक विषय का ही ग्रहण करेगा'।[18] यह स्थिति कर्मयोग की आधारशिला है। बिना निर्विषयता के निष्काम कर्म सम्भव नहीं है, क्योंकि जब तक मन में विविध विषयों की इच्छा रहेगी, तब तक कर्म सकाम ही रहेगा।

इस प्रकार स्वामी सत्यपति परिव्राजक की निर्विषयता केवल एक दार्शनिक अवधारणा नहीं है, अपितु एक सुनियोजित क्रियात्मक प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया गायत्री मन्त्र से आरम्भ होकर इच्छा-प्रयत्न के निरोध तक जाती है और अन्ततः आत्म-साक्षात्कार में पर्यवसित होती है।

3. आत्मा-मन-इन्द्रिय-निर्माण: साधना का क्रियात्मक पक्ष : स्वामी सत्यपति परिव्राजक के क्रियात्मक योग का द्वितीय महत्वपूर्ण सोपान 'आत्मा-मन-इन्द्रिय-निर्माण' है। 12 जुलाई 2003, आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी को दिए

गए प्रवचन में स्वामी जी ने इस विषय को विस्तार से समझाया।[1] इस प्रवचन का उद्देश्य साधक को उपासना के योग्य बनाना था, क्योंकि 'बिना आत्मा-मन-इन्द्रिय के निर्माण के कोई भी व्यक्ति उपासना के योग्य नहीं बन सकता'।[2]

3.1 निर्माण का अर्थ एवं आवश्यकता : यहाँ 'निर्माण' का अर्थ है - आत्मा, मन और इन्द्रियों को इस प्रकार संस्कारित करना कि वे योग के उपकरण बन सकें। स्वामी जी ने स्पष्ट किया कि 'मन पर अधिकार' निर्माण की प्रथम शर्त है।[3] अधिकार का स्वरूप बताते हुए वे कहते हैं: 'जिस विषय में उनको लगाना चाहता हूँ लगा लेता हूँ, जहाँ से हटाना चाहता हूँ हटा लेता हूँ'।[4]

यह अधिकार कैसे प्राप्त होता है? स्वामी जी उत्तर देते हैं: 'ज्ञानपूर्वक मन, इन्द्रिय, इच्छा, प्रयत्न को वश में करके'।[5] इसका अर्थ है कि केवल बलपूर्वक दमन पर्याप्त नहीं है, अपितु विवेक और ज्ञान के साथ नियन्त्रण आवश्यक है। जब साधक यह जान लेता है कि अमुक विषय हेय है और अमुक उपादेय, तभी वह मन को सही दिशा में लगा सकता है।

3.2 आत्मनिरीक्षण: निर्माण की कुंजी : स्वामी जी ने आत्मा-मन-इन्द्रिय निर्माण के लिए 'आत्मनिरीक्षण' को मुख्य साधन बताया है।[6] उन्होंने साधकों के सम्मुख 5 प्रश्न रखे:

1. 'योग की विधि का सम्पादन ठीक-ठीक हो रहा है या नहीं?'[7]
2. 'उसमें कोई त्रुटि तो नहीं रह रही है?'[8]
3. 'बाधाएँ क्या आ रही हैं?'[9]
4. 'उन बाधाओं को किस प्रकार रोकें?'[10]
5. 'अभी तक जो प्रगति हुई है, वह सन्तोषजनक है या नहीं?'[11]

इन प्रश्नों का उद्देश्य है कि साधक निरन्तर अपने अभ्यास का मूल्यांकन करता रहे। बिना आत्मनिरीक्षण के साधना यान्त्रिक हो जाती है और प्रगति रुक जाती है। स्वामी जी का निर्देश था कि 'प्रत्येक साधक को प्रतिदिन सोने से पूर्व इन प्रश्नों पर चिन्तन करना चाहिए'।[12]

3.3 शरीर की अनुभूति का निरोध : निर्माण प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण बिन्दु 'शरीर की अनुभूति का निरोध' है। एक साधक ने प्रश्न किया: 'शरीर आदि की अनुभूति तो रहेगी?'[13] स्वामी जी ने दृढ़ता से उत्तर दिया: 'नहीं। कोई अनुभूति नहीं होने देंगे'।[14]

इसका कारण स्पष्ट करते हुए वे कहते हैं कि जब तक शरीर का भान रहेगा, तब तक मन पूर्णतः अन्तर्मुखी नहीं हो सकता। 'शरीर की अनुभूति भी एक प्रकार का विषय ही है'।[15] अतः निर्विषयता की सिद्धि के लिए शरीर के भान का भी त्याग आवश्यक है। यह अवस्था गहरी समाधि की ओर ले जाती है, जहाँ 'मैं शरीर हूँ' यह भाव भी समाप्त हो जाता है।

3.4 साधक-स्वामी संवाद: अनुभूतियों का विश्लेषण : 14 जुलाई 2003 को स्वामी जी ने साधकों की अनुभूतियों का विश्लेषण किया।[16] विभिन्न साधकों ने भिन्न-भिन्न अनुभव बताए:

साधक 1 : 'मैंने कुछ सूक्ष्म शब्दों का उच्चारण किया, परन्तु वे शब्द कौन-से थे स्मरण नहीं है'।[17]

साधक 2 : 'विषय कोई नहीं था, किन्तु मन में हल्का स्पन्दन था'।[18]

साधक 3 : 'द्रष्टा दृशिमात्रः इस सूत्र का स्मरण किया। साक्षीभाव की भावना की'।[19]

स्वामी जी ने इन अनुभूतियों पर टिप्पणी करते हुए कहा कि 'साक्षीभाव की भावना भी एक प्रकार का विषय ही है'।[20] यद्यपि साक्षीभाव उच्च अवस्था है, तथापि पूर्ण निर्विषयता में उसका भी त्याग हो जाता है। 'जब तक भावना है, तब तक मन सक्रिय है'।[21]

3.5 सरलता का रहस्य : एक साधक ने प्रश्न किया: 'आपके निर्देशन में अभ्यास इतना सरल क्यों लगता है?'[22] स्वामी जी ने इसका रहस्य उद्घाटित किया: 'ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव को हमने समझा है'।[23]

इसका अर्थ है कि जब साधक को ईश्वर के स्वरूप का, आत्मा के स्वरूप का, और मन की प्रकृति का

यथार्थ ज्ञान हो जाता है, तब अभ्यास में उलझन नहीं होती। अज्ञान ही सभी बाधाओं का मूल है। 'ज्ञान होने पर प्रयोग में उलझन नहीं होती'।[24]

इस प्रकार आत्मा-मन-इन्द्रिय निर्माण एक क्रमिक प्रक्रिया है, जिसमें ज्ञान, आत्मनिरीक्षण, और निरन्तर अभ्यास तीनों का समन्वय है। यह निर्माण ही साधक को निर्विकल्प समाधि के योग्य बनाता है।

4. निष्काम कर्म: योग का आधार : स्वामी सत्यपति परिव्राजक ने क्रियात्मक योग की सिद्धि के लिए 'निष्काम कर्म' को अनिवार्य आधार माना है। उनके अनुसार 'बिना निष्काम कर्म के कोई व्यक्ति योगी नहीं बन सकता, न ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है'।[1] यह स्थापना योगदर्शन के 'तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः'[2] सूत्र की व्यावहारिक व्याख्या है।

4.1 निष्काम कर्म की परिभाषा : सामान्यतः लोग निष्काम कर्म का अर्थ 'फल की इच्छा किए बिना कर्म करना' समझते हैं। स्वामी जी ने इस अवधारणा को अधिक सूक्ष्मता से स्पष्ट किया। उनके अनुसार 'सकाम है या निष्काम है, यह कर्म के एक होने पर भी लक्ष्य के ऊपर निर्धारित होगा'।[3]

उदाहरण देते हुए वे कहते हैं: 'यदि दर्शन पढ़ाने का लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति है तो वह निष्काम कर्म है, किन्तु यदि धन-सम्मान का लक्ष्य है तो सकाम हो जाएगा'।[4] अतः कर्म का स्वरूप नहीं, अपितु कर्ता का लक्ष्य निष्कामता या सकामता का निर्धारण करता है। एक ही कार्य - जैसे योग प्रशिक्षण देना - एक व्यक्ति के लिए सकाम हो सकता है और दूसरे के लिए निष्काम।

4.2 निष्काम कर्म और ईश्वर-प्राप्ति का सम्बन्ध : स्वामी जी ने निष्काम कर्म को ईश्वर-प्राप्ति से अभिन्न रूप से जोड़ा है। वे कहते हैं: 'ईश्वर-प्राप्ति लक्ष्य से जुड़ जाने पर निष्काम कर्म बन जाएँगे'।[5] इसका तात्पर्य है कि जब साधक का प्रत्येक कर्म ईश्वर को समर्पित हो जाता है, तब वह स्वतः निष्काम हो जाता है।

गीता के 'कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन'[6] श्लोक की व्याख्या करते हुए स्वामी जी कहते हैं कि फल का त्याग करने का अर्थ कर्म का त्याग नहीं है। 'फल की आसक्ति का त्याग करना है, फल का नहीं'।[7] कर्म का फल अवश्य मिलेगा, किन्तु साधक को उसमें आसक्त नहीं होना चाहिए।

4.3 स्वामी जी का आत्मनिरीक्षण : स्वामी सत्यपति परिव्राजक स्वयं भी निष्काम कर्म के आदर्श थे। वे योग प्रशिक्षण देते समय निरन्तर आत्मनिरीक्षण करते थे। उनका कथन है: 'इनके पीछे मेरा लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति करना-कराना है या यश, धन, भोग आदि की प्राप्ति?'[8]

यह आत्मनिरीक्षण प्रत्येक योग शिक्षक के लिए आवश्यक है। यदि शिक्षक का लक्ष्य शिष्यों से धन लेना, प्रसिद्धि पाना या अपना सम्प्रदाय बढ़ाना है, तो उसका शिक्षण सकाम कर्म बन जाएगा और वह स्वयं योग से भ्रष्ट हो जाएगा। स्वामी जी चेतावनी देते हैं: 'यदि लक्ष्य बदल गया तो साधना भ्रष्ट हो जाएगी'।[9]

4.4 - 25 नियमों में निष्कामता का अभ्यास

2003 के शिविर में निर्धारित 25 नियमों में निष्काम कर्म का व्यावहारिक अभ्यास कराया गया था।[10] कुछ नियम प्रत्यक्ष रूप से निष्कामता से सम्बन्धित हैं:

1. 'इच्छापूर्वक कोई भी विचार उत्पन्न नहीं करेंगे'[11] - यह नियम सकाम संकल्पों के निरोध का अभ्यास है।
2. 'मौन एवं संस्कृत-सम्भाषण'[12] - व्यर्थ की वार्ता से बचकर मन को निष्काम बनाना।
3. 'स्वाध्याय एवं आत्मनिरीक्षण'[13] - प्रतिदिन यह जाँचना कि मेरे कर्म किस लक्ष्य से प्रेरित हैं।

4.5 निष्काम कर्म और निर्विषयता का सम्बन्ध : निष्काम कर्म और निर्विषयता एक-दूसरे के पूरक हैं। स्वामी जी समझाते हैं कि 'जब तक मन में सकाम भाव रहेगा, तब तक निर्विषयता सम्भव नहीं है'।[14] क्योंकि सकामता स्वयं एक विषय है। जब साधक फल की इच्छा करता है, तो उसका मन उस फल रूपी विषय से बँध जाता है।

इसके विपरीत, 'निर्विषयता की सिद्धि होने पर सभी कर्म स्वतः निष्काम हो जाते हैं'।[15] क्योंकि जब मन में कोई विषय ही नहीं रहेगा, तो फल की इच्छा भी नहीं उठेगी। इस प्रकार निर्विषयता साधना का आन्तरिक पक्ष है और निष्काम कर्म बाह्य पक्ष। दोनों के समन्वय से ही क्रियात्मक योग पूर्ण होता है।

5. 25 नियम: क्रियात्मक योग की आचार संहिता : स्वामी सत्यपति परिव्राजक के क्रियात्मक योग का व्यावहारिक आधार 2003 के त्रैमासिक शिविर में निर्धारित '25 नियम' हैं।[1] ये नियम केवल बाह्य अनुशासन नहीं हैं, अपितु चित्तवृत्ति निरोध की प्रयोगशाला हैं। स्वामी जी का स्पष्ट मत था कि 'बिना आचार के विचार स्थिर नहीं होता, और बिना विचार की स्थिरता के योग सिद्ध नहीं होता'।[2]

5.1 नियमों का उद्देश्य एवं महत्त्व : ये 25 नियम शिविरार्थियों के दैनिक जीवन को इस प्रकार व्यवस्थित करते हैं कि प्रत्येक क्षण योगाभ्यास बन जाए। स्वामी जी ने कहा: 'ये नियम साधक को बाह्य जगत से समेटकर अन्तर्जगत में ले जाते हैं'।[3] नियमों का पालन करते-करते साधक की बहिर्मुखी वृत्तियाँ क्षीण होती हैं और अन्तर्मुखता बढ़ती है।

5.2 प्रमुख नियमों का विश्लेषण : बृहती ब्रह्ममेधा भाग-1 में उपलब्ध नियमों में से कुछ मुख्य नियम निम्नलिखित हैं:[4]

1. प्रातः प्रार्थना एवं ध्यान: 'प्रातः 3:30 बजे जागरण करके प्रार्थना एवं ध्यान करना'।[5] ब्राह्ममुहूर्त में उठने से सत्वगुण की वृद्धि होती है और तमस-रजस का शमन होता है। स्वामी जी कहते थे कि 'जो साधक सूर्योदय से पूर्व नहीं उठता, उसका योग आधा रह जाता है'।[6]

2. मौन एवं संस्कृत-सम्भाषण : 'आवश्यकता पड़ने पर केवल संस्कृत में सम्भाषण करना, अन्यथा मौन रहना'।[7] इस नियम का उद्देश्य वाणी का संयम है। पतंजलि ने 'सत्य' को यम में रखा है, और व्यर्थ की वार्ता असत्य की जननी है। संस्कृत सम्भाषण से बुद्धि सूक्ष्म होती है और वैदिक संस्कार दृढ़ होते हैं।

3. स्वाध्याय एवं आत्मनिरीक्षण: 'प्रतिदिन वेद, उपनिषद्, सत्यार्थप्रकाश का स्वाध्याय और रात्रि में आत्मनिरीक्षण करना'।[8] आत्मनिरीक्षण में साधक को देखना है कि 'आज मेरे मन में कौन-कौन से विचार उठे, वे उचित थे या अनुचित'।[9]

4. इच्छापूर्वक विचार उत्पन्न न करना: 'इच्छापूर्वक कोई भी विचार उत्पन्न नहीं करेंगे'।[10] यह नियम निर्विषयता का प्रत्यक्ष अभ्यास है। स्वामी जी ने स्पष्ट किया कि 'अनुभव तो होगा, किन्तु अनुभव कर रहा हूँ, यह ज्ञान नहीं उठेगा'।[11] अर्थात् वृत्ति उठते ही उसे पहचानकर रोक देना है, उस पर आरुढ़ नहीं होना है।

5. भोजन एवं विहार का संयम : 'मिताहार, शुद्धाहार और समय पर आहार'।[12] योगदर्शन में 'युक्ताहारविहारस्य'[13] को योग का लक्षण बताया गया है। स्वामी जी ने सात्विक भोजन पर विशेष बल दिया।

5.3 नियम पालन की विधि : स्वामी जी ने नियमों के पालन में तीन बातों पर बल दिया: श्रद्धा, दृढ़ता और निरन्तरता।[14] 'नियम को भार समझकर नहीं, अपितु साधना समझकर पालन करना है'।[15] यदि कोई साधक किसी नियम का उल्लंघन कर देता था, तो उसे दण्ड नहीं दिया जाता था, अपितु 'प्रायश्चित्त स्वरुप अतिरिक्त जप या मौन' करने को कहा जाता था।[16]

5.4 नियमों का वैदिक आधार : ये 25 नियम मनमाने नहीं हैं। इनका आधार वेद, मनुस्मृति, और योगदर्शन है। उदाहरणार्थ, 'प्रातः जागरण' का आधार अथर्ववेद का मन्त्र 'उद्यन्त्सूर्यः' है।[17] 'मौन' का आधार 'मौनं सर्वार्थसाधनम्' यह सूक्ति है।[18] स्वामी जी ने वैदिक परम्परा को क्रियात्मक रुप में प्रस्तुत किया।

इस प्रकार ये 25 नियम क्रियात्मक योग की रीढ़ हैं। इनके बिना केवल आसन-प्राणायाम से निर्विकल्प समाधि की कल्पना नहीं की जा सकती। स्वामी सत्यपति परिव्राजक ने इन नियमों के माध्यम से योग को जीवनशैली बना दिया।

6: निष्कर्ष : प्रस्तुत शोध पत्र में स्वामी सत्यपति परिव्राजक द्वारा प्रतिपादित क्रियात्मक योग के स्वरुप का विश्लेषण बृहती ब्रह्ममेधा भाग-1 में संकलित 2003 के त्रैमासिक उच्चस्तरीय क्रियात्मक योग प्रशिक्षण शिविर के आधार पर किया गया है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि स्वामी जी का योग केवल सैद्धान्तिक विवेचन नहीं है, अपितु एक सुसंगठित क्रियात्मक पद्धति है जिसका लक्ष्य 'चित्तवृत्तिनिरोध' को प्रत्यक्ष अनुभव में लाना है।[1]

6.1 प्रमुख निष्कर्ष :

1. निर्विषयता क्रियात्मक योग का प्राण है: स्वामी सत्यपति परिव्राजक ने स्पष्ट किया कि बिना निर्विषयता के योग की कल्पना नहीं की जा सकती।[2] निर्विषयता का अर्थ है - अभ्यास काल में मन को ईश्वर, आत्मा, प्रकृति आदि किसी भी विषय से न जोड़ना।[3] यह स्थिति सामान्य धारणा-ध्यान से भिन्न है, क्योंकि इसमें कोई आलम्बन शेष नहीं रहता। गायत्री मन्त्र के अर्थसहित पाठ से आरम्भ करके इच्छा और प्रयत्न के निरोध तक जाने वाली यह प्रक्रिया पूर्णतः वैज्ञानिक है।

2. निष्काम कर्म योग का आधार है: शोध से प्रमाणित होता है कि स्वामी जी के अनुसार 'बिना निष्काम कर्म के कोई व्यक्ति योगी नहीं बन सकता'।[4] निष्कामता का निर्धारण कर्म के स्वरूप से नहीं, अपितु कर्ता के लक्ष्य से होता है। यदि लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति है, तो वही कर्म निष्काम बन जाता है।[5] यह अवधारणा गीता के कर्मयोग की क्रियात्मक व्याख्या है।

3. 25 नियम योग की आचार संहिता हैं: 2003 के शिविर में निर्धारित 25 नियम केवल बाह्य अनुशासन नहीं हैं।[6] ये नियम प्रातः 3:30 बजे जागरण से लेकर रात्रि में आत्मनिरीक्षण तक साधक के सम्पूर्ण दिन को योगमय बना देते हैं। 'इच्छापूर्वक कोई भी विचार उत्पन्न नहीं करेंगे'[7] यह नियम निर्विषयता का प्रत्यक्ष अभ्यास है।

4. आत्मा-मन-इन्द्रिय निर्माण साधना का अनिवार्य सोपान है: बिना मन पर अधिकार के कोई भी व्यक्ति उपासना के योग्य नहीं बन सकता।[8] स्वामी जी ने आत्मनिरीक्षण को निर्माण की कुंजी बताया है। साधक को प्रतिदिन पाँच प्रश्नों के माध्यम से अपनी प्रगति का मूल्यांकन करना चाहिए।[9]

6.2 शोध की प्रासंगिकता : आधुनिक युग में जब मानसिक तनाव, अवसाद, अनिद्रा और चित्त की चंचलता महामारी का रुप ले चुकी है, तब स्वामी सत्यपति परिव्राजक की निर्विषयता की विधि अत्यन्त प्रासंगिक हो जाती है। यह विधि न केवल धार्मिक साधकों के लिए, अपितु सामान्य गृहस्थों, विद्यार्थियों और व्यावसायिकों के लिए भी उपयोगी है। क्योंकि इसका मूल सिद्धान्त है - 'मन को अनावश्यक विषयों से मुक्त करके आवश्यक विषय पर केन्द्रित करना'।[10]

6.3 भविष्य के लिए सुझाव :

1. स्वामी जी के क्रियात्मक योग पर न्यूरोविज्ञान के आधार पर अनुसंधान किया जाना चाहिए कि निर्विषयता की अवस्था में मस्तिष्क में क्या परिवर्तन होते हैं।
2. 25 नियमों को आधुनिक जीवनशैली के अनुसार सरलीकृत करके सामान्य जनों के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है।
3. दर्शन योग महाविद्यालय, रोजड़ में दिए गए प्रवचनों का अंग्रेजी एवं अन्य भाषाओं में अनुवाद किया जाना चाहिए, ताकि वैश्विक स्तर पर इसका लाभ पहुँचे।

6.4 अन्तिम विचार : स्वामी सत्यपति परिव्राजक ने यह सिद्ध कर दिया कि योग कोई रहस्यवाद नहीं है, अपितु एक प्रत्यक्ष विज्ञान है। उन्होंने 'योग की क्रिया करके ही ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है'[11] इस वैदिक उद्घोष को जीवित किया। उनका क्रियात्मक योग आज के युग में 'डिजिटल डिटॉक्स' से लेकर 'माइंडफुलनेस' तक की सभी समस्याओं का वैदिक समाधान प्रस्तुत करता है।

निष्कर्षतः, बृहती ब्रह्ममेधा भाग-1 में वर्णित क्रियात्मक योग केवल ऐतिहासिक दस्तावेज नहीं है, अपितु मानवता के लिए एक जीवित पथ-प्रदर्शक है। स्वामी जी के शब्दों में - 'ईश्वर आनन्द स्वरूप है, उसे प्राप्त करो, इसका निषेध नहीं है'।[12] यही क्रियात्मक योग का अन्तिम लक्ष्य है।

7. सन्दर्भ सूची :

भूमिका से :

1. पतंजलि। योगदर्शन , समाधिपाद, सूत्र 2: "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"।
2. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति। (2012). बृहती ब्रह्ममेधा (भाग 1). संकलनः सुमेरु प्रसाद दर्शनाचार्य. दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़, जिला साबरकांठा, गुजरात. आशीर्वचन, पृष्ठ क.

3. वही, आशीर्वचन, पृष्ठ क.
4. वही, पृष्ठ 47: "योग की क्रिया करके ही ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है"।
5. वही, आशीर्वचन, पृष्ठ क: "वेदादि सत्यशास्त्रों में प्रतिपादित विशुद्ध वैदिक-योग का विज्ञान और क्रियारूप में अभ्यास द्वारा आत्मा से परमात्मा का साक्षात्कार करना"।
6. वही, पृष्ठ 73: "प्रयोग के समय में न ईश्वर को विषय बनाना है, न आत्मा को विषय बनाना है"।
7. वही, पृष्ठ 63: "शिविरार्थियों के लिए आवश्यक नियम"।

खंड 2. क्रियात्मक योग का स्वरुप से :

1. पतंजलि। योगदर्शन , समाधिपाद, सूत्र 18: "विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः"।
2. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति। (2012). बृहती ब्रह्ममेधा (भाग 1). संकलन: सुमेरु प्रसाद दर्शनाचार्य. दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़, जिला साबरकांठा, गुजरात. पृष्ठ 47.
3. वही, पृष्ठ 47: "मन को किसी विषय से नहीं जोड़ना है"।
4. वही, पृष्ठ 47.
5. वही, पृष्ठ 73.
6. वही, पृष्ठ 73: "ईश्वर आनन्द स्वरुप है, रहे। उसको प्राप्त करो, इसका निषेध नहीं है"।
7. वही, पृष्ठ 47: "पहले गायत्री मन्त्र का पाठ करें"।
8. वही, पृष्ठ 47: "इसका अर्थ करते हुए, उसको भावना करते हुए, स्मरण करते हुए"।
9. वही, पृष्ठ 47: "अब मन को सर्वथा रोक देना है"।
10. वही, पृष्ठ 48: "इच्छा, प्रयत्न को रोक रखा है, यह मुख्य विषय रहेगा"।
11. वही, पृष्ठ 48: "इसको कहते हैं हेयोपादेयशून्य स्थिति"।
12. वही, पृष्ठ 70.
13. वही, पृष्ठ 70.
14. वही, पृष्ठ 70: "बाहर की ध्वनि आ रही थी - तो उसको रोक देना था"।
15. वही, पृष्ठ 70: "उपेक्षा का अर्थ है ध्यान नहीं देना और बलपूर्वक रोक देना"।
16. वही, पृष्ठ 48.
17. वही, पृष्ठ 48: "इसका प्रयोजन है मन, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीर और आत्मा पर नियन्त्रण"।
18. वही, पृष्ठ 48: "मन अनधिकृत विषय में नहीं जाएगा, केवल आवश्यक विषय का ही ग्रहण करेगा"।

खंड 3. आत्मा-मन-इन्द्रिय-निर्माण से :

1. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति। (2012). बृहती ब्रह्ममेधा (भाग 1). संकलन: सुमेरु प्रसाद दर्शनाचार्य. दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़, जिला साबरकांठा, गुजरात. पृष्ठ 69.
2. वही, पृष्ठ 69.
3. वही, पृष्ठ 69: "मन पर अधिकार"।
4. वही, पृष्ठ 69: "जिस विषय में उनको लगाना चाहता हूँ लगा लेता हूँ, जहाँ से हटाना चाहता हूँ हटा लेता हूँ"।
5. वही, पृष्ठ 69: "ज्ञानपूर्वक मन, इन्द्रिय, इच्छा, प्रयत्न को वश में करके"।
6. वही, पृष्ठ 69.
7. वही, पृष्ठ 69: "योग की विधि का सम्पादन ठीक-ठीक हो रहा है या नहीं?"।
8. वही, पृष्ठ 69.
9. वही, पृष्ठ 69.
10. वही, पृष्ठ 69.
11. वही, पृष्ठ 69.
12. वही, पृष्ठ 69.
13. वही, पृष्ठ 48: "शरीर आदि की अनुभूति तो रहेगी?"।
14. वही, पृष्ठ 48: "नहीं। कोई अनुभूति नहीं होने देंगे"।
15. वही, पृष्ठ 48.

16. वही, पृष्ठ 70.
17. वही, पृष्ठ 70.
18. वही, पृष्ठ 70.
19. वही, पृष्ठ 70: "द्रष्टा दृशिमात्रः इस सूत्र का स्मरण किया। साक्षीभाव की भावना की"।
20. वही, पृष्ठ 70.
21. वही, पृष्ठ 70.
22. वही, पृष्ठ 70.
23. वही, पृष्ठ 70: "ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव को हमने समझा है"।
24. वही, पृष्ठ 70: "ज्ञान होने पर प्रयोग में उलझन नहीं होती"।

खंड 4. निष्काम कर्म से :

1. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति। (2012). बृहती ब्रह्ममेधा (भाग 1). संकलन: सुमेरु प्रसाद दर्शनाचार्य. दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़, जिला साबरकांठा, गुजरात. पृष्ठ 69: "बिना निष्काम कर्म के कोई व्यक्ति योगी नहीं बन सकता, न ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है"।
2. पतंजलि। योगदर्शन , साधनपाद, सूत्र 1: "तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः"।
3. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति। (2012). बृहती ब्रह्ममेधा (भाग 1), पृष्ठ 69: "सकाम है या निष्काम है, यह कर्म के एक होने पर भी लक्ष्य के ऊपर निर्धारित होगा"।
4. वही, पृष्ठ 69.
5. वही, पृष्ठ 69: "ईश्वर-प्राप्ति लक्ष्य से जुड़ जाने पर निष्काम कर्म बन जाएँगे"।
6. श्रीमद्भगवद्गीता , अध्याय 2, श्लोक 47: "कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन"।
7. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति। (2012). बृहती ब्रह्ममेधा (भाग 1), पृष्ठ 69.
8. वही, पृष्ठ 69: "इनके पीछे मेरा लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति करना-कराना है या यश, धन, भोग आदि की प्राप्ति?"।
9. वही, पृष्ठ 69.
10. वही, पृष्ठ 63: "शिविरार्थियों के लिए आवश्यक नियम"।
11. वही, पृष्ठ 62: "इच्छापूर्वक कोई भी विचार उत्पन्न नहीं करेंगे"।
12. वही, पृष्ठ 63.
13. वही, पृष्ठ 63.
14. वही, पृष्ठ 69.
15. वही, पृष्ठ 70.

खंड 5. 25 नियम से :

1. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति। (2012). बृहती ब्रह्ममेधा (भाग 1). संकलन: सुमेरु प्रसाद दर्शनाचार्य. दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़, जिला साबरकांठा, गुजरात. पृष्ठ 63: "शिविरार्थियों के लिए आवश्यक नियम"।
2. वही, पृष्ठ 62.
3. वही, पृष्ठ 62.
4. वही, पृष्ठ 62-63.
5. वही, पृष्ठ 63.
6. वही, पृष्ठ 63.
7. वही, पृष्ठ 63: "मौन एवं संस्कृत-सम्भाषण"।
8. वही, पृष्ठ 63: "स्वाध्याय एवं आत्मनिरीक्षण"।
9. वही, पृष्ठ 69.
10. वही, पृष्ठ 62: "इच्छापूर्वक कोई भी विचार उत्पन्न नहीं करेंगे"।
11. वही, पृष्ठ 62: "अनुभव तो होगा, किन्तु अनुभव कर रहा हूँ, यह ज्ञान नहीं उठेगा"।
12. वही, पृष्ठ 63.
13. श्रीमद्भगवद्गीता , अध्याय 6, श्लोक 17: "युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु"।

14. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति। (2012). बृहती ब्रह्ममेधा (भाग 1), पृष्ठ 63.
15. वही, पृष्ठ 63.
16. वही, पृष्ठ 63.
17. अथर्ववेद , काण्ड 13, सूक्त 1, मन्त्र 1.
18. सुभाषितरत्नभाण्डागारम् , श्लोक 145.

खंड 6. निष्कर्ष से :

1. पतंजलि। योगदर्शन , समाधिपाद, सूत्र 2: "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः"।
2. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति। (2012). बृहती ब्रह्ममेधा (भाग 1). संकलन: सुमेरु प्रसाद दर्शनाचार्य. दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़, जिला साबरकांठा, गुजरात. पृष्ठ 47.
3. वही, पृष्ठ 73: "प्रयोग के समय में न ईश्वर को विषय बनाना है, न आत्मा को विषय बनाना है"।
4. वही, पृष्ठ 69: "बिना निष्काम कर्म के कोई व्यक्ति योगी नहीं बन सकता, न ईश्वर का साक्षात्कार कर सकता है"।
5. वही, पृष्ठ 69: "सकाम है या निष्काम है, यह कर्म के एक होने पर भी लक्ष्य के ऊपर निर्धारित होगा"।
6. वही, पृष्ठ 63: "शिविरार्थियों के लिए आवश्यक नियम"।
7. वही, पृष्ठ 62: "इच्छापूर्वक कोई भी विचार उत्पन्न नहीं करेंगे"।
8. वही, पृष्ठ 69: "बिना आत्मा-मन-इन्द्रिय के निर्माण के कोई भी व्यक्ति उपासना के योग्य नहीं बन सकता"।
9. वही, पृष्ठ 69.
10. वही, पृष्ठ 48: "मन अनधिकृत विषय में नहीं जाएगा, केवल आवश्यक विषय का ही ग्रहण करेगा"।
11. वही, पृष्ठ 47: "योग की क्रिया करके ही ईश्वर का साक्षात्कार हो सकता है"।
12. वही, पृष्ठ 73: "ईश्वर आनन्द स्वरुप है, रहे। उसको प्राप्त करो, इसका निषेध नहीं है"।

8. ग्रन्थ सूची :

मुख्य स्रोत :

1. परिव्राजक, स्वामी सत्यपति। (2012). बृहती ब्रह्ममेधा (भाग 1, प्रथम संस्करण). संकलन एवं सम्पादन: सुमेरु प्रसाद दर्शनाचार्य. दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, वानप्रस्थ साधक आश्रम, रोजड़, जिला साबरकांठा, गुजरात. पृ. क-घ, 1-73.

सहायक वैदिक एवं दार्शनिक ग्रन्थ :

2. पतंजलि। योगदर्शन . समाधिपाद एवं साधनपाद.
3. श्रीमद्भगवद्गीता . अध्याय 2, श्लोक 47 एवं अध्याय 6, श्लोक 17.
4. अथर्ववेद . काण्ड 13, सूक्त 1, मन्त्र 1.
5. सुभाषितरत्नभाण्डागारम् . श्लोक 145.

सम्पादकीय एवं आशीर्वचन :

6. दर्शनाचार्य, सुमेरु प्रसाद। (2012, अप्रैल 8). आशीर्वचन . बृहती ब्रह्ममेधा (भाग 1), पृ. क. दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन, रोजड़.

•